चीनी की बढ़ती कीमतों का तिलिस्म

इस साल जनवरी से अब तक चीनी और दाल की कीमतें लगभग दोगुनी व तिगुनी हो चुकी हैं। उपभोक्ता मामलों के मंत्रालय ने 11 अगस्त को जारी रिपोर्ट में स्वीकार किया कि जून-जुलाई के बीच, एक महीने में ही 14 जरूरी खाद्य वस्तुओं की कीमतों में 32 फ़ीसदी तक उछाल आया है। सरकार और उसके मंत्री महंगाई रोकने के बारे में जितना बयान देते हैं, महंगाई उसी रफ़्तार से बढ़ती चली जाती है। 11 अगसत को ही सर्वोच्च न्यायालय की दो सदस्यीय खंडपीठ ने क्षोभ व्यक्त करते हुए कहा कि 'आम आदमी की तकलीफ़ भयावह स्तर तक पहुंच चुकी है। दाल जैसी आम आदमी की खाने की वस्तुओं की कीमतें बेतहाशा बढ़ रही हैं।' कोर्ट ने सरकार से कहा कि वह इस समस्या का समाधान जल्दी से जल्दी 'देशभक्ति की भावना से' करे। पर सरकार का मानना है कि कोर्ट मामलों को निपटाने के लिए है, न कि उसे उपदेश देने के लिए।

जुलाई-अगस्त के महीनों में आम आदमी अपने बच्चों की शिक्षा के खर्च के बोझ से दबा रहता है। साथ ही त्योहारों का मौसम होने के कारण खर्च और भी बढ़ जाता है। ऊपर से दाल, चीनी, चावल, आटा, नमक, तेल, मसालों और सब्ज़ियों के आसमान छूते भावों ने उसकी कमर तोड़ कर रख दी है। कल से आराम से दाल-रोटी खाने वालों को आज घर चलाना मुश्किल होता जा रहा है। रोजमर्रे के खर्च और दूसरे जरूरी कामों को निपटाने में वे असमर्थ होते जा रहे हैं। क्या शहर, क्या गांव, हर जगह लोग महंगाई की मार से त्रस्त हैं। यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि देश की 80 प्रतिशत जनता 20 रुपये रोज़ाना पर गुजर-बसर करने को मजबूर है तो उसकी दशा भिखारियों जैसी नहीं तो और कैसी होगी।

आसमान छूती महंगाई के कई कारण गिनाये जा रहे हैं। कई लोग जोर-जोर से यह बात उछाल रहे हैं कि मानसून की बेरुखी के कारण इस साल कई फ़सलों की बोआई कम हुई है जिससे खाद्यान्न का उत्पादन कम होगा और मांग बढ़ेगी, पर आपूर्ति नहीं हो पायेगी। पर यह तो आगे आने वाले दिनों की बात है। इसका आज की महंगाई से क्या रिश्ता? आज बाज़ार में अनाज भरपूर होना चाहिए, क्योंकि पिछले साल मानसून बेहतर था। वैसे भी पिछले पांच वर्षों में चावल के दामों में 46 फ़ीसदी, गेहूं के दामों में 62 फ़ीसदी, आटे के दामों में 55 फ़ीसदी और नमक के दामों में 42 फ़ीसदी की वृद्धि हुई है। बाकी खाद्य पदार्थों की कीमतों में औसतन 40 फ़सदी की वृद्धि हुई है। 2009 के चुनाव के पहले कीमतों में अचानक उछाल आई थी तथा उसके बाद वृद्धि बेलगाम है। क्या पिछले पांच साल सूखे के साल रहे हैं? यह सरकार बेईमान है। कुछ लोग कह रहे हैं कि पिछले चंद सालों से शहरों और गांवों में हर जगह लोगों की आमदनी में वृद्धि हो रही है और इसलिए क्रयशक्ति बढ़ी है। सरकार और निजी कंपनियों ने किसानों को उनकी ऊपज का अधिक मूल्य दिया है। ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना से भी मज़दूरों को अधिक मज़दूरी मिली है। इस तरह बाज़ार में मांग तो बढ़ी है, पर उस हिसाब से आपूर्ति नहीं होने के कारण महंगाई में वृद्धि हो रही है। कुछ लोग दुनिया भर के बाज़ारों में वस्तुओं की कीमतों में आई वृद्धि को कारण बता रहे हैं। यानी 'सावन के अंधे' हर तरफ़ हरा ही हरा देख रहे हैं।

चीनी की कीमत इस साल जनवरी से ही चढ़नी शुरू हुई थी। भारतीय अर्थव्यवस्था की निगरानी करने का दावा करने वाली एक एजेंसी ने 16 अप्रैल को एक रिपोर्ट जारी कर के कहा कि 'चीनी की जमाखोरी की जा रही है।' इस एजेंसी ने साफ-साफ संकेत किया था कि 'शायद जून के बाद कीमतें बढ़ाई जायेंगी।' लेकिन सरकार हाथ पर हाथ धरे बैठी रही। जुलाई की शुरू तक चीनी की कीमत बढ़ते-बढ़ते 24 से 27 रुपये किलो पर टिक गई थी। उसी समय कृषि मंत्री ने गन्ने की पैदावार कम होने की बात कह कर चीनी मिल मालिकों और बड़े व्यापारियों को इशारा कर दिया कि और देखते-देखते ही चीनी 35 से 40 रुपये प्रति किलो बिक रही है। हालांकि बाज़ार में चीनी की कमी नहीं है। स्टॉक में चीनी पहले भी कम नहीं थी। इधर आयात के बाद इसकी आपूर्ति और बढ़ गई है। फ़िर भी कीमतें बेलगाम हैं। क्यों?

हमारे देश में अभी भी चीनी की सालाना खपत प्रति व्यक्ति 14 किलो से 18 किलो के बीच अटकी हुई है जबकि यह 25 किलो प्रति व्यक्ति होनी चाहिए। जाहिर है, लोग जरूरत से बहुत कम चीनी खा रहे हैं। इसलिए मांग बढ़ने की बात बेकार है। चीनी की कुल उपलब्धता में कमी का रोना भी सही नहीं है। 2007-2008 और 2008-09 के पेराई सत्र के दौरान कुल 419 लाख टन चीनी का उत्पादन हुआ। ध्यान रहे कि 2005-06 और 2006-07 के पेराई सत्र में चीनी का बंपर उत्पादन हुआ ाा और चीनी मिलों एवं सरकारी गोदामों में भरी पड़ी थी। इसके अलावा अब 25 लाख टन कच्ची चीनी और करीब 10 लाख टन सफ़ेद चीनी का आयात किया जा रहा है। इतनी चीनी होने के बावजूद जब कोई इसकी कमी की बात करता है तो इसमें साजिश की बू आती है। रहा सवाल अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में चीनी के बढ़ते दामों का तो जब घरेलू बाज़ार में भरपूर चीनी उपलब्ध है तो चीनी का आयात क्यों?

दरअसल, चीनी की कीमतें जानबूझ कर बढ़ाई जा रही हैं। कृषि मंत्री शरद पवार को चीनी मिलों का हितैषी माना जाता है। यह सारी कवायद इन्हीं मिल मालिकों और बड़े व्यापारियों को फ़ायदा पहुंचाने के लिए की जा रही है।

31 जुलाई को जब इन्होंने संसद में इस साल गन्ना उत्पादन में कमी आने की बात कही तो तो यकायक चीनी की कीमतें उससे भी अधिक चढ़ गईं जितनी जनवरी से अब तक चढ़ी थीं। उनका बयान आते ही तेजड़ियों नपे चीनी के भाव को 3200रुपये क्विंटल से भी अधिक कर दिया। चीनी मिल मालिक इस खेल को शातिराना तरीके से खेल रहे हैं। चीनी के खुदरा व्यापारियों की संस्था कानपुर सुगर मर्चेंट एसोसियेशन ने प्रधानमंत्री को पत्र लिख कर चीनी के थोक व्यापारियों और चीनी मिल मालिकों पर अंकुश लगाये जाने की मांग की है। इन्होंने चीनी मिल मालिकों पर बाज़ार में जानबूझ कर कमी लाने का आरोप लगाया है। इनका कहना है कि अगस्त के कोटे की चीनी की निकासी 22-23 जुलाई तक हो जानी चाहिए थी, जबकि 2-3 अगस्त तक उसे जारी नहीं किया गया और चीनी के दाम को बढ़ने दिया गया।

साथ ही चीनी की कमी का शोर मचा कर चीनी आयात करने की खुली छूट दी गई। इस खेल में भी करोड़ों रुपये का वारा-न्यारा हुआ। अकेले िम्भावली शुगर मिल को कच्ची चीनी के आयात से कम से कम 300 करोड़ रुपये का मुनाफ़ा हो रहा है। वह भी 3-4 रुपये प्रति किलो मुनापफ़े के हिसाब से, जबकि आज आठ से दस रुपये किलो मार्जिन मिल रहा है। आयात शुल्क में छूट देने से सरकार को भी अरबों रुपये राजस्व की हानि होगी। चीनी की कीमतों में वृद्धि का एक दूसरा कारण चीनी के लिए किसी निश्चित स्टॉक सीमा की बाध्यता का भी न होना है। इसकी वजह से जमाखोरों और काला बाज़ारियों को खुल कर खेलने का मौका मिल जाता है। उन्होंने चीनी को गोदामों में कैद कर लिया है।

दाल, चीनी, सब्ज़ियां और मसाले तथा अन्य जरूरी खाद्य वस्तुओं की चढ़ती कीमतों का सबसे बड़ा कारण इनकी जमाखोरी और कालाबाज़ारी है। इनका काम होता है बाज़ार में वस्तुओं की आपूर्ति को बाधित करना और उपभोक्ताओं में अफ़रा-तफ़री पैदा करना। जब उपभोक्ताओं में घबराहट फैल जाती है तब ये जमाखोर धीरे-धीरे अपना माल निकालते हैं और बेतहाशा मुनाफ़ा बटोरते हैं। आज प्रधानमंत्री, कृषि मंत्री और उपभोक्ता मामलों के मंत्री भी यह कह रहे हैं कि जमाखोरी और कालाबज़ारी बड़े पैमाने पर जारी है, पर ये इसे रोकने के लिए कोई ठोस कार्रवाई नहीं करते। शर्म भी नहीं आती इन शोषक और जनता के दुश्मन शासकों को।

सिर्फ़ यही नहीं, आज बाज़ार सटोरियों के चंगुल में है। ये जमाखोरों से अलग और उनसे बड़े 'कारोबारी' हैं। ये वायदा कारोबार के जरिये सट्टेबाजी करते हैं और वस्तुओं की कीमतों को मन माफिक उठाते-गिराते हैं।

ये काफी पहले वस्तुओं की कागज़ी खरीद कर लेते हैं, चाहें वह वसतु बाद में उपलब्ध हो या न हो। उदाहरण के लिए वायदा कारोबार के तहत इस माह तक दालों की खरीदारी हो चुकी है। इसके हिसाब से अक्टूबर और इसके बाद अरहर दाल की कीमत 110 रुपये प्रति किलो तय हो चुकी है। ये उस समय की स्थिति को देख कर अरहर दाल को 110 रुपये से भी अतिधक पर बेचने की कोशिश करेंगे। यही हाल चीनी का है। चीनी की अक्टूबर-नवंबर कीमत 40 रुपये प्रति किलो है।

जाहिर-सी बात है कि जमाखोरों का काम सट्टेबाज़ारियों के बाद का है। आज वायदा कारोबार की स्थिति के हिसाब से आगामी महीनों में गेहूं, चना, सोयाबीन, हल्दी, आलू, चावल, आटा आदि की कीमतों में भारी वृद्धि होने की संभावना है।

आज महंगाई रोकना सरकार की प्राथमिकता में नहीं है। सरकार सिर्फ़ घड़ियाली आंसू बहा रही है। दरअसल, उदारीकरण के इस दौर में बड़-बड़ी देशी-विदेशी कंपनियों के मुनाफ़े में वृद्धि के लिए यह सब खेल खेला जा रहा है। सरकार इस खेल में मुनाफ़ाखोरों के साथ है। कुछ माह पहले संयुक्त राष्ट्र की ओर से 'भोजन के अधिकार' संबंधी रिपोर्ट जारी करते हुए जीन जगलर ने कहा था अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों में 30 फ़ीसदी की वृद्धि सट्टेबाजी के कारण हुई है। हमारे देश में यह और भी ज्यादा होने का अनुमान है। उपभोक्ता मामलों के मंत्रालय ने सरकार से 25 जरूरी खाद्य पदार्थों के वायदा कारोबार पर रोक लगाने की मांग की थी जिसे सरकार ने अस्वीकार कर दिया। एक तरफ सरकारी खरीद प्रणाली को तोड़ा जा रहा है तो दूसरी तरफ बड़ी-बड़ी कंपनियों को फ्यूचर ट्रेडिंग, वायदा कारोबार की खुली छूट दे दी गई है। यह किसानों और उपभोक्ताओं, दोनों के लिए घातक है। इस पर पूर्ण प्रतिबंध लगना चाहिए जबकि सरकार कभी-कभी आंशिक प्रतिबंध लगा कीर खानापूर्ति करती है। यह इस लुटेरी व्यवस्था का लाजिमी नतीजा है। बाज़ार की इस मुनाफ़ाखोर व्यवस्था के रहते महंगाई और भुखमरी से छुटकारा पाना संभव नहीं है।

□□ विक्रम

गन्ना किसानों की मुसीबतें

अभी हाल में दिल्ली में जंतर-मंतर पर उत्तर प्रदेश के गन्ना किसानों ने धरना-प्रदर्शन किया। इनका नेतृत्व किसानों के स्वयंभू नेता टिकैत कर रहे थे। इनके साथ राष्ट्रीय लोकदल के अजित सिंह भी थे। वैसे गन्ना किसानों की मांगों का समर्थन सत्ताधारी दलों को छोड़ कर सभी दलों के नेताओं ने किया, पर मुख्य रूप से टिकैत और अजित सिंह ही इसे लेकर सक्रिय थे। इस मामले के संबंध में अजित सिंह के लड़के ने 'युवराज' राहुल गांधी से मुलाकात की थी। फ़िर राहुल ने अपनी मां को यह कहानी सुनायी होगी। इसलिए कांग्रेस का रुख भी धरना-प्रदर्शन कर रहे इन गन्ना किसानों के प्रति ज़्यादा कड़ा नहीं था। और कम से कम अजित सिंह ने जो राजनीति की थाली में बैंगन रहे हैं, अपने लड़के का परिचय 'युवराज' से करा दिया जो आगे काम आयेगा। टिकैत की किसान राजनीति कैसी रही है, इसे सभी समझते हैं। वे जाटवाद के आधार पर चौधरी चरण सिंह के 'छोरे' को छोड़ कर नहीं चल सकते और टिकैत के पीछे किसानों की जो भीड़ उमड़ती है, वह जाटवाद के आधार पर ही उभरती है।

बहरहाल, जहां तक उत्तर प्रदेश का सवाल है, यह सदियों से प्रमुख गन्ना उत्पादक क्षेत्र रहा है। यहां के किसानों ने गन्ना उत्पादन और गन्ने से गुड़ और खांडसारी आदि के निर्माण में विशेषज्ञता हासिल कर ली थी। यही कारण है कि अंग्रेज़ शासक इन्हें 'गिरमिटिया' मज़दूर बना कर विदेशों में ले गये और वहां जम कर उनका शोषण किया। गन्ना उत्पादक किसानों को मारिशस, इंडोनेशिया, फीजी, वेस्ट इंडिज आदि देशों में भेजा गया और कालान्तर में वे वहीं के होकर रह गये।

हमारे देश में चीनी की पहली आधुनिक मिल 1903 में देवरिया ज़िले के प्रतापपुर में लगाई गई और 1921 में दूसरी चीनी मिल भूटानी में खोली गई। 1931 में पडरौना और 1934 में बैतालपुर कठकुईयां और खड्डा में खोली गई। एक समय यहां करीब 19 चीनी मिलें काम कर रही थीं। पर इन चीनी मिलों ने गन्ना उत्पादक किसानों का व्यवस्थित शोषण शुरू कर दिया। शायद ही कोई ऐसी मिल हो जो गन्ना उत्पादकों को तत्काल भुगतान करती हो। रकम उधार में चलती है। यह अंदेशा किसानों को बराबर बना रहता है कि उनका पैसा मिलेगा या नहीं? ऐसी स्थिति में किसान गन्ना-उत्पादन क्यों करेगा? वह किसी दूसरे अनाज का उत्पादन क्यों नहीं करेगा। चूंकि गन्ना मुख्य नकदी फसल है, इसलिए किसान मेहनत और पूंजी लगा कर गन्ने का उत्पादन करता है। सदियों से गन्ना उत्पादन में लगे होने के कारण उसे इस क्षेत्र में विशिष्टता भी हासिल हो चुकी है। पर एक तो कम और दूसरे समय से जब पैसे ही नहीं मिलते तो वह क्यों इस फसल को उगाता रहे? इसलिए पहले लगातार गन्ना उत्पादन करने वाले किसान इसकी खेती छोड़ते चले जा रहे हैं। जानकार सूत्रों के अनुसार लगभग 60 प्रतिशत किसानों ने गन्ने की खेती छोड़ने का मन बना लिया है। सरकार किसानों की बातें सुनती नहीं। हां, वह पूंजीपतियों-उद्योगपतियों की बातें तुरंत सुन लेती है और उनके हित में कदम उठाने लगती है। लेकिन कच्चा माल नहीं मिलेगा तो औद्योगिक उत्पादन कैसे होगा? गन्ना नहीं होगा तो चीनी कैसे बनेगी? क्या उद्योगपतियों और सरकार ने कभी इसके बारे में सोचा है? अगर सोचा होता तो इस कदर गन्ना उत्पादकों के प्रति वे बेरुखे नहीं होते। उद्योगपतियों ने किसानों का पैसा तत्काल उन्हें दे दिया होता। कम दर पर गन्ना लेना और तत्काल उसका भुगतान न करना तो 'कोढ़ में खाज' वाली स्थिति है। क्या सरकार चीनी मिलों के प्रबंधकों को इस बात के लिए मजबूर नहीं कर सकती कि वे पहले नकदी दें तब गन्ना लें? करने को कर क्यों नहीं सकती। पर इस सरकार को किसानों की समस्या से कोई लेना-देना नहीं है। यदि होता तो विदर्भ में और पूरे देश में लाखों किसानों ने आत्महत्या नहीं की होती? यह सरकार किसान विरोधी है। सिर्फ़ चुनाव के दिनों में इसे किसानों की याद आती है, क्योंकि किसान बहुसंख्यक होने के कारण सरकार बनाने में निर्णायक भूमिका अदा करते हैं। पर अभी किसानों को इसका यानी अपनी ताकत का अहसास नहीं हुआ है। किसानों का कोई नेतृत्व विकसित नहीं हुआ है। कहने के लिए जो नेतृत्व है, वह भी उन्हें भटकाने वाला और स्वार्थी है। वह किसानों की भलाई की बात नहीं कर सकता। वह राजसत्ता तक पहुंचने के लिए सिर्फ़ उनका इस्तेमाल करना चाहता है और ऐसा करता है। किसानों में इतनी चेतना नहीं कि वे अपने हितों के लिए संगठित हों। जब तक वे संगठित नहीं होते, वे अपना राजनीतिक दबाव नहीं बनाते, सिर्फ़ लुटते-पिटते रहेंगे। — मनोज

> **"यह सरकार किसान विरोधी है। सिर्फ़ चुनाव के दिनों में इसे किसानों की याद आती है, क्योंकि किसान बहुसंख्यक होने के कारण सरकार बनाने में निर्णायक भूमिका अदा करते हैं। पर अभी किसानों को इसका यानी अपनी ताकत का अहसास नहीं हुआ है। किसानों का कोई नेतृत्व विकसित नहीं हुआ है। कहने के लिए जो नेतृत्व है, वह भी उन्हें भटकाने वाला और स्वार्थी है। वह किसानों की भलाई की बात नहीं कर सकता। वह राजसत्ता तक पहुंचने के लिए सिर्फ़ उनका इस्तेमाल करना चाहता है और ऐसा करता है। किसानों में इतनी चेतना नहीं कि वे अपने हितों के लिए संगठित हों। जब तक वे संगठित नहीं होते, वे अपना राजनीतिक दबाव नहीं बनाते, सिर्फ़ लुटते-पिटते रहेंगे।"**